ISSN-2277-4491

VIBGYOR

Bi-annual Multi Disciplinary Research Journal

Special Issue : April 2018

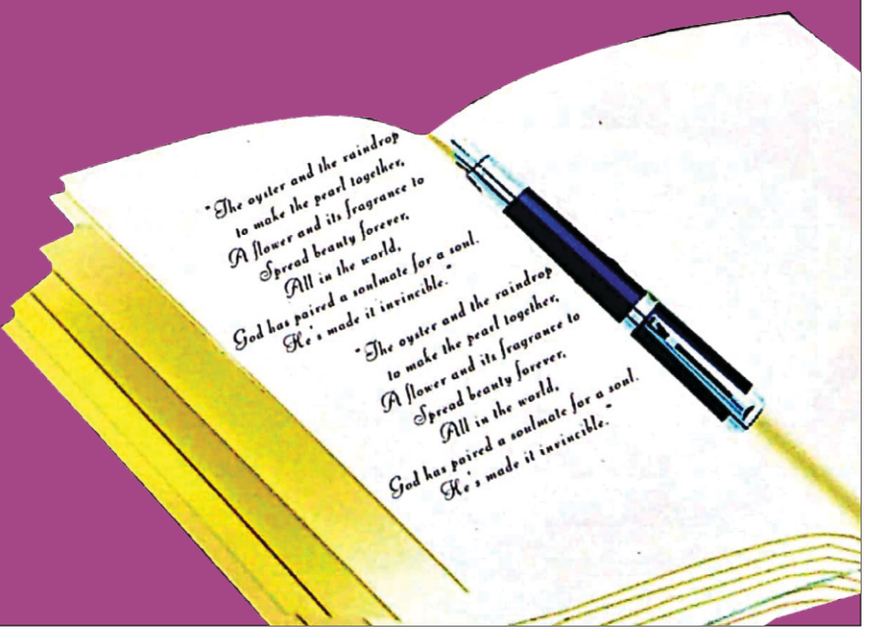

VIBGYOR

Bi-annual Multidisciplinary Research Journal

SPECIAL ISSUE - APRIL 2018

The VIBGYOR, a plethora of gem studded writings by eminent scholars from across the globe would genuinely usher a new vigour among the intellectuals in the world. The National and International luminaries in the Editorial Board would synchronize the views penned by renowned scholars from far and wide for publication. The biannual Multi-disciplinary Research Journal extends its canvas to all qualitative writings.

Editor In Chief

DR. JOBI GEORGE

Principal

Bhiwapur Mahavidyalaya, Bhiwapur

Editor

DR. SUNIL SHINDE

Associate. Prof. & Head

Dept. of Economics

Bhiwapur Mahavidyalaya, Bhiwapur

Published By

Research Journal Publication Committee

Bhiwapur Mahavidyala, Bhiwapur

Accredited with Grade B (CGPA-2.54) by NAAC, Bengaluru

Dist. Nagpur - 441201(M.S.) India

Ph. : No. 07106-232349, 9423602502, 9422829240

E-mail : vibgyorbmv@yahoo.in

Website : www.bgm.ac.in

VIBGYOR

Bi-annual Multidisciplinary Research Journal
Special Issue - April 2018

Published By
Research Journal Publication Committee
Bhiwapur Mahavidyala, Bhiwapur
Dist. Nagpur - 441201(M.S.) India
Ph. : No. 07106-232349, 9423602502, 9422829240
E-mail : vibgyorbmv@yahoo.in
Website : www.bgm.ac.in

UGC Approved List of Journals
Journal No. 46447

ISSN-2277-4491

Special Issue : April 2018

© Author
Copyright © All rights are reserved. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrival system or transmitted in any form or by any means electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise without prior permission of the Editor.

The papers included in this publication have been directly reproduced, with minimum editorial intervention, from the files sent by the respective authors. Opinions expressed in the research papers are those of contributors and do not necessarily match the views of Research Journal Committee of the college. The Publisher or Editorial Board is not responsible for any information contained therein.

Type Setting
Scan Dot Computer,
Mahal, Nagpur Mobile : 9822565782
E-Mail : aakar100@gmail.com

अनुक्रमणिका

१.	THE STATUS OF ENGLISH AS A LINK LANGUAGE IN INDIA TODAY: A REVIEW	**Dr. Jobi George**	7
2.	Identity and Multiculturalism in Zadie Smith's, 'White Teeth'	**Dr. Vinita S Virgandham**	12
3.	Identity, Displacement, and Resilience: Amitav Ghoshs Portrayal of the Colonial Experience	**Dr. Raheel Quraishi**	18
4.	A study on Patent awareness among faculties of Engineering Colleges	**Rajasree O.P., Mangala A. Hirwade, Sunilkumar U.T.**	22
5.	An Overview of Indian Government Policies in the Agricultural Sector and Farmers' Suicides	**Dr. Mangesh Kadu**	29
6.	Physical Fitness: The need of the Era	**Asst. Prof. Aditya Sarwe**	35
७.	द्रारिद्र्य निमुर्लन आणि सरकारच्या कल्याणकारी योजना : एक दृष्टीक्षेप	**प्रा. डॉ. सुनिल शिंदे**	३७
८.	महाराष्ट्रातील तमाशा : एक लोकनाट्य	**प्रा. डॉ. मधुकर वि. नंदनवार**	४१
९.	मानवाधिकार और बुद्ध तत्वज्ञान	**प्रा. डॉ. मोतीराज चव्हाण**	४६
१०.	नागपुर शहरातील औद्योगिक विकासासाठी कामगारांचे अध्ययन : एक अभ्यास	**प्रा. डॉ. राजेश बहुरुपी**	५०
११.	आधुनिक काळात मूल्यशिक्षण व्यवसायाची खरी गरज	**प्रा. डॉ. अनिता महावादीवार**	५३
१२.	धम्मपालनाची मानवी दृष्टिकोनातून वर्तमान उपयोगिता	**सहा. प्रा. सोमेश्वर विनोदराव वासेकर, सहा. प्रा. भिमादेवी महादेव डांगे**	५७

मानवाधिकार और बुद्ध तत्वज्ञान

❑ डॉ. मोतीराज चव्हाण
सहाय्यक प्राध्यापक
भिवापूर महाविद्यालय, भिवापूर जि. नागपूर (म.रा.)

संक्षिप्त :

यह शोध पत्र मानव अधिकारों की अवधारणा पर प्रकाश डालता है। समाज के भीतर मानव व्यक्तित्व को आकार देने और पोषण करने में उनके महत्व पर जोर देता है। यह इस विश्वास पर प्रकाश डालता है कि व्यक्तिगत और मानवाधिकारों को अंतरराष्ट्रीय कानून के दायरे में राज्य की तुलना में अधिक महत्व देना चाहिए, क्योंकि ये अधिकार सार्वभौमिक रूप से लागू होते हैं और स्वभाव से अप्राप्य होते है। मानवाधिकार शब्द आधिकारिक तौर पर १९४८ में सार्वभौम घोषणा मे माध्यम से पेष किया गया था, जिसने अठारहवीं शताब्दी के मनुष्य के अधिकारों को प्रभावी ढंग से पुनर्जीवित किया, जिन्हें पहले अविभाज्य अधिकार या प्राकृतिक अधिकार के रूप में जाना जाता था। मानवाधिकार एक ऐसे समाज की आधारशिला है जहां व्यक्ति भय के बिना समानता और मानवीय गरिमा के साथ सह-अस्तित्व में रह सकते है। वे किसी व्यक्ति के पूर्ण व्यक्तित्व विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करते है। भारत के संविधान में इन जातियों के लिऐ ऐसे शोषण से निपटने के लिए विशेष प्रावधान शामिल है।

प्रस्तावना :

समाज में मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए कतिपय अधिकारों की आवश्यकता होती है। जिसके अभाव में उसके व्यक्तित्व का विकास समाज में असम्भव है इन्हीं को मानव अधिकार कहा जाता है। हम व्यक्ति और मानवाधिकार को अन्तर्राष्ट्रीय विधि के विषय में राज्य से अधिक महत्त्व देने की आवश्यकता मानते है, इन अधिकारों को प्राप्त करने तथा इनका उपभोग करने हेतु और किसी विशेषता अथवा योग्यता की जरूरत नहीं है, यह अधिकार का भी परित्याग नहीं कर सकता है। 'मानवाधिकार' शब्द का प्रयोग इसकी सार्वभौम घोषणा होने के साथ ही १९४८ में किया गया, जो मूलतः अट्ठारहवी श्ताब्दी के 'मानव का अधिकार' का पुनःप्रवर्तन कर ऐसा बनाया गया, इससे पहले परम्परागत रूप से 'मानवाधिकार' को 'अहस्तान्तरणीय अधिकार' प्राकृतिक अधिकार या मानव का अधिकार कहा जाता था।

मानव अधिकार ही समाज में ऐसा वातावरण उत्पन्न करते है, जिसमें सभी व्यक्ति समानता के साथ निर्भीक रूप से मानव गरिमा के साथ जीवन यापन कर पाते है। अधिकार सामाजिक जीवन की वे परिस्थितियां है, जिनके बिना सामान्यतः कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर सकता। भारत में मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम १९९३ को भारत की संसद ने पारित किया। मानव अधिकारों का तात्पर्य संविधान द्वारा प्रत्यक्ष अथवा अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में सन्निहित व्यक्तियों की प्राण, स्वतंत्रता, समानता एवं गरिमा से सम्बंधित ऐसे अधिकारों से है जो भारत के न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय है।

मानवाधिकार मुख्यतः नैतिक और वैध हो सकते हैं। नैतिक अधिकार वे होते है जो व्यक्तियों की नैतिकता पर आधारित होते है। इन अधिकारों को राज्य के नियमों का अनुमोदन प्राप्त नहीं होता है और इसलिए इनका उल्लंघन भी वैधानिक रूप से दण्डनीय नहीं माना जाता है। इनका पालन व्यक्ति अपने अन्तःकरण एवं अपनी स्वाभाविक प्रेरणा से करता है। नैतिक अधिकारों के विपरीत वैध अधिकार वे होते है जो राज्य के कानूनों के द्वारा मान्य तथा रक्षित होते हैं और लोकतांत्रिक राज्यों में सामान्यतया इन अधिकारों को न्यायिक संरक्षण प्राप्त होता है।

मानव से ही मानवता का, अर्थात् इंसान से ही इंसानियत का जन्म होता है, जो सभी धर्म, दर्शनों का सार है। जाति, भाषा, धर्म, सम्प्रदाय क्षेत्रीयता, वर्ग भेद आदि के संघर्ष प्रत्येक युग के इतिहास में मिलते हैं। दम्भ एवं मिथ्याभिमान किसी भी व्यक्ति, समाज के पतन का कारण बनते है। अपनी श्रेष्ठता का मिथ्याभिमान और दम्भ ही जर्मनी को ले डूबा। जातीय संकीर्णता एवं विविध अंधविश्वास मानवता के विकास के मार्ग पर बाधा बनते आये हैं। समय-समय पर इन अमानवीय प्रथाओं के विरोध एवं खण्डन हेतु अथक

प्रयास होते रहे है। आज अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं पिछडे वर्ग के लोगों के मौलिक अधिकारों का शोषण हो रहा है। शोषण का मुख्य कारण उनका अशिक्षित होना हैं। भारत के संविधान में इन जातियों के लिये विशेष प्रावधान हैं।[१] बौध्द धर्म में मुलतः मानवाधिकार है। मानवाधिकार कें अनेक पैलू हैं। जो इस शोध निंबधद्वारा प्रस्तुत किया है।

मानवाधिकार का अर्थ :

मानव अधिकार शब्द से ही इसका अर्थ प्रतिबिम्बित होता है अर्थात् यह अधिकार मानव को मानव होने के कारण प्राप्त है। इन अधिकारों को प्राप्त करने तथा इनका उपयोग करने हेतु और किसी विशेषता अथवा योग्यता की जरूरत नहीं है। यह अधिकार सभी व्यक्तियों को प्राप्त होते है और क्योंकि कोई भी व्यक्ति, व्यक्ति होने का परित्याग नहीं कर सकता अतः वह इन अधिकारों का भी परित्याग नहीं कर सकता।

आधारभूत रूप से मानव अधिकार उन सब परिस्थियों की उपलब्धि हैं जिसमें व्यक्ति अपनी उन सब अर्न्तनिहित योग्यताओं का विकसित कर सकता है, जो उसे प्रकृति ने प्रदान की है और सबसे बडा तथा प्रमुख तथ्य है कि ये परिस्थितियाँ मानव की सम्मानपूर्ण स्थिति को बनाए रखने में सहायक होती हैं तथा इसमें जन्म, प्रजाति, धर्म, रंग, लिंग, अथवा इसी प्रकार के अन्य किसी तत्त्व का कोई महत्त्व नहीं होता। इस रूप में देखा जाए तो मानव अधिकारों का उद्‌भाव मानव सभ्यता के प्रारम्भ में ही ढूंढा जा सकता है। जब मानव ने समूह में रहना प्रारम्भ किया था तब से परस्पर एक दूसरे के साथ उनकी अन्तःक्रियाएँ बढनें लगी थी।

अधिकार (Rights) :

'अधिकार' शब्द को परिभाषित करते हुए हैरोल्ड लास्की ने कहा है, "अधिकार मानव जीवन की ऐसी परिस्थितियाँ है जिनके बिना सामान्यतया कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्त्व का पूर्ण विकास नहीं कर सकता।" अब ऐसी स्थिति में मानवाधिकारों को यह कहना तर्कसंगत होगा-ऐसे अधिकार जिनके बिना एक मानव अपने व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के बारे में सोच भी नहीं सकता जो कि मानव में मानव होने के फलस्वरूप अन्तर्निहित हैं। मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो एक मानव को मानव होने के नाते आवश्यक रूप से मिलने चाहिए।

मानवाधिकार (Human Rights) :

'मानवाधिकार' शब्द का प्रयोग इसकी सार्वभौम घोषणा होने के साथ ही १९४८ में किया गया, जो मूलतः अठराहवीं शताब्दी के 'मानव का अधिकार' का पुनः प्रवर्तन कर ऐसा बनाया गया। इससे पूर्व परम्परागत रूप से 'मानवाधिकार' को अहस्तान्तरणीय अधिकार, अन्य संक्राम्य अधिकार, प्राकृतिक अधिकार या मानव का अधिकार कहा जाता था।[२]

मानवाधिकार की विशेषतांए :

मानवाधिकार की प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत है-

१. मानवाधिकार द्वारा मानव के सम्मान तथा प्रतिष्ठा की रक्षा होती है इससे स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व की भावना का विकास होता है।
२. यह मानव सभ्यता के संरक्षण के लिए न्यूनतम आवश्यकताएँ होती है।
३. मानवाधिकार व्यक्ति तथा व्यक्तियों के समूह के अधिकार है।
४. इनकी रक्षा समाज तथा राज्य की सत्ता के द्वारा हर स्तर पर की जाती है।
५. मानवाधिकार, व्यक्ति के समाज में ही उपलब्ध होते हैं।
६. जन्मप्रदत्त होने के कारण यह अधिकार व्यक्ति से अलग नहीं किये जा सकते है।[३]

मानवाधिकार और दलित तत्वज्ञान :

भारत सरकार द्वारा जिस वर्ग को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति वर्ग कहा जाता है, उसे ही आमतौर पर हिंदुस्तान भर में दलित कहा जाता है। दलित का अर्थ है एक ऐसा वर्ग जो हर दृष्टि से वंचित है। इस संदर्भ में आदिवासी शब्द की व्याख्या भी प्रासंगिक है। आमतौर पर माना जाता है कि जो लोग जंगलों में रहते है और इस आधुनिक युग में भी प्राकृतिक माहौल में, प्रकृति के साथ जीवनयापन कर रहे है, वे सभी आदिवासी हैं। यहां यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि अनुसूचित जनजाति और आदिवासियों में क्या संबंध है। दरअसल भारत सरकार ने कुछ आदिवासी जातियों को मान्यता देते हुए उन्हें संविधान की एक अनुसूची में रखा है और उन्हें अनुसूचित जनताति कहा गया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सरकारी आदिवासियों को ही हम अनुसूचित जनताति के नाम से जानते हैं। अनुसूचित जाति भी ऐसा ही एक वर्ग हैं। इस वर्ग में लगभग ५० जातियां है और इन्हें संविधान की एक विशेष अनुसूची में रखा गया है इसलिए इन्हें अनुसूचित जाति की उपमा दी गयी है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति एक ऐसा वर्ग है जो संसाधनों के वितरण और विकास के मामलों में लगभग वंचित ही है।

यह वर्ग, समाज के अन्य वर्गो के मुकाबले काफी पिछड़ा हुआ है। यही कारण है कि इस वर्ग के लोगों को संविधान और सरकार द्वारा विशेष संरक्षण प्रदान किया गया है ताकि इस वर्ग के लोग भी विकास की मुख्यधारा में अपना स्थान बना सकें।

गिलिन एंड गिलिन ने अपनी पुस्तक 'कल्चरल एन्थ्रापोलॉजी' में आदिवासियों को परिभाषित करते हुए लिखा है कि-

"स्थानिय जनजातीय समूहों का ऐसा समवाय जनजाति कहलाता है जो ए सामान्य क्षेत्र में निवास करता है, एक सामान्य भाषा का प्रयोग करता है तथा जिसकी एक सामान्य संस्कृति होती है।"[४]

१९९३ की शरद ऋतु में शिकागो में विश्व धर्म संसद मुलाकात के लिए तय है कि दुनिया के धमों के बीच बुनियादी नैतिक शिक्षाओं पर एक आम सहमति पाया जा सकता है. बैठक में प्रमुख विश्व धर्मों के रूप में अच्छी तरह से जातीय और अन्य अल्पसंख्यक समुहों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया. थेरवाद, महायान, वज्रयान और जेन सहित कई बौध्द स्कुलों के प्रतिनिधी उपस्थित थे और मुख्य समापन भाषण सितंबर ४ पर ग्रांट पार्क में दलाई लामा द्वारा दिया गया था।

इस आपसी सम्मेलन के प्रमुख फल के एक दस्तावेज के रूप में जाना जाता था एक वैश्विक नीति की दिशा में घोषणा - वैश्विक नीति मूलभूत नैतिक सिद्धांतों के लिए है। इन सिद्धांतों में से कई मानव अधिकार, चिंता और वैश्विक नीति की आधारशिला के रूप में दुनिया के धर्मों द्वारा मानव अधिकारों और गरिमा के सार्वभौमिक मान्यता "नई विश्व व्यवस्था देखता है।"

वर्तमान कागज एक बौद्ध परिप्रेक्ष्य से इस प्रक्रिया के लिए एक योगदान हैं। अपने उद्देश्य जो संबोधित किया जाना चाहिए अगर मानव अधिकारों के एक बौद्ध दर्शन को विकसित करने के कुछ बुनियादी मुद्दों के एक खोज करने के लिए सीमित कर रहे हैं। बौद्ध धर्म के लिए वर्तमान में इस तरह के एक दर्शन की कमी लगती है। बौद्ध धर्म मानव अधिकारों के लिए एक ण्जदठट्टतणठज्ञ है, और अपने इतिहास के अधिकांश के लिए अन्य चिंताओं के साथ व्यस्त हैं। यह बौद्ध धर्म की रक्षा में सुझाव दिया जा सकता है, कि मानव अधिकारों के लिए चिंता का विषय एक postreligious घटना है जो धर्मनिरपेक्ष और विचारधाराओं सत्ता की राजनीति के साथ धर्म से अधिक है, और यह इसलिए है उपेक्षा के इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म का आरोप लगाते अनुचित है। मानवाधिकारों के इस तरह के समझ गलत है,लेकिन एक तरफ करने के लिए मानव अधिकारों के विशिष्ट अंक छोड़ने के लिए एक सामाजिक ढांचे को विकसित करने में कोई शक नहीं है कि बौद्ध धर्म अभी तक ईसाई और इस्लाम जैसे धर्मों के पीछे lags है जो सुसमाचार के भीतर इस तरह के सवालों को संबोधित किया जा सकता है। एक ऐसे बौद्धिक गतिशील परंपरा के लिए बौद्ध धर्म नैतिक और राजनीतिक दर्शन में एक हल्के है।[५]

मानवाधिकार विषयक सिद्धांत :

मानवाधिकार में 'अधिकार' का आशय कई रूपों में जाने के कारण इसे सिद्धान्त रूप में प्रतिपादित करने की आवश्यकता महसूस हुई ये सिद्धान्त इस प्रकार है।

१. अधिकारों का प्राकृतिक सिद्धान्त - अधिकारों सम्बन्धी यह सिद्धान्त सर्वाधिक प्राचीन है जो कि मानवीय अधिकार को पूर्णतया प्राकृतिक और जन्मसिद्ध मानता है। आशीर्वादम् ने लिखा है, अधिकार उसी प्रकार मानव की प्रकृति के अंग होते है जिस प्रकार उसकी चमडी का रंग। इनकी विस्तृत व्याख्या करने या औचित्य बताने की कोई आवश्यकता नहीं है। ये तो स्वयंसिद्ध है। इस सिद्धान्त का समर्थन सामाजिक समझौता सिद्धान्त के समर्थकों ने मुख्य रूप से किया है- इस सिद्धान्त में यह कहा गया है कि अधिकार जन्मजात, निरपेक्ष और स्वयंसिद्ध है, इसलिए समाज तथा राज्य को व्यक्ति के इन अधिकारों पर प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहिए।

इस सिद्धान्त की आलोचना इसलिए की जाती है क्योंकि इसमें प्राकृतिक शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ है। प्रो. रिची के अनुसार प्राकृतिक शब्द के कई अर्थ है जैसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, सृष्टि का वह भाग जहाँ मानव नहीं है, आदर्श या पूर्ण लक्ष्य, अपूर्व साधारण और औसत। इस सिद्धान्त के किसी भी प्रतिपादक ने इस शब्द के अर्थ को निश्चित नहीं किया है।

२. अधिकारों का वैधानिक सिद्धान्त - इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में नार्मन नाइल्ड का कहना है कि कानून हमारे अधिकारों को मान्यता देता है और उनकी रक्षा करता है, परन्तु वह उन्हें जन्म नहीं दे सकता। अधिकारों को कानून का स्वरूप दिया जाये या न दिया जाये। उनका अपना अलग अस्तित्व है। लॉस्की ने भी लिखा है अधिकारों का वैधानिक सिद्धान्त केवल यह बतला सकता है कि वास्तव में राज्य का स्वरूप कैसा है, लेकिन उससे यह पता नहीं चलता कि राज्य को कानूनों का जन्मदाता मानने पर राज्य के

स्वेच्छाचारी व निरंकुश होने की संभावना बढ़ जाती है।

३. अधिकारों का ऐतिहासिक सिद्धान्त - यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि अधिकार इतिहास की जननी है। वर्षों से हम जिन परम्पराओं, प्रथाओं व रीति-रिवाजों का पालन कर रहे होते हैं, वे ही कालान्तर में अधिकार के रूप में परिणत हो जाते हैं। यह सिद्धान्त अधिकारों को न तो प्राकृतिक मानता है, न ही राज्य-कृत अपितु उन्हें अधिकार मानता है जिनके पालन करने में हम अभ्यस्त हो जाते हैं। प्रो. रिची ने लिखा हैं, जिन व्यक्तियों के सम्बन्ध में लोग सोचते हैं कि वे उन्हें मिलने ही चाहिये, वे ही अधिकार होते हैं, जिनके वे अभ्यस्त होते हैं या जिनके सम्बन्ध में सही या गलत उनकी यह धारणा होती है कि उन्हें सभी प्राप्त थे। अप्रत्यक्ष रूप में अधिकारों के ऐतिहासिक सिद्धान्त का समर्थन करते हुये की बर्क कहते हैं कि गौरवपूर्ण क्रांति का आधार अंग्रेजी की रीति-रिवाजों पर आधारित अधिकार ही थे।

४. अधिकारों का समाज कल्याण सिद्धान्त - यह सिद्धान्त प्रतिपादित करता है कि राज्य उन्हें ही अधिकारों के रूप में मान्यता प्रदान करता है जो समाज के लिए उपयोगी होते हैं तथा समाज के हितों के अनुरूप हेते है। वास्तव में अधिकारों की स्थापना समाज-कल्याण को ध्यान में रखते हुए ही की जाती है। बेंथम और मिल हैसे उपयोगितावादी तथा रोस्को पाउन्ड एवं प्रो. चेफर जैसे विद्वान भी इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते है।

निष्कर्ष :

वर्तमान कागज एक बौद्ध परिप्रेक्ष्य से इस प्रक्रिया के लिए एक योगदान है। संक्षेप मे, यह कहा जाता है। की, मानव अधिकारों की अवधारणा के साथ बौध्द धर्म को अधिक गहराई से जोडने की आवश्यकता को पहचानना जरूरी है। उन ऐतिहासिक कारकों को स्वीकार करता है जिन्होंने इस क्षेत्र में इसकी सापेक्ष उपेक्षा में योगदान दिया है। और सुझाव दिया है कि, बौध्द धर्म में मानव का एक मजबूत दर्शन विकसित करने की, क्षमता रखता है। यह बौध्द परंपरा के सिद्धांतों और मानवाधिकारों पर समकालीन प्रवचन के बीच अंतर को पाटने के लिए इन मुद्दों की विचारशील खोज का आहवान करता है।

संदर्भसुची :

१. Babu, Brijesh,Human Right For Society, Global Publications, New Delhi, 2010

2. Chandra, Ashish International Encyclopaedia of Human Right, Rajat Publication New Delhi, 2011.

3. Gupta, U.N., Human Right, Atlantic Publishers, Vol. I New Delhi.

4. Sri Krishna ,S. Dalit and Human Rights, Serrial Samudralal, Anil Kumar, Publications, New Delhi, 2007.

5. Shyamlal, Ambedkar and Dalit Movement, Rawat Publication Jaipur, 2008.

६. स्नेही,कालीचरण, डॉ. अम्बेडकर वैचारिकी एवं दलित विमर्श, आराधना ब्रदर्स, कानपूर, २०१२.

७. सिंह, डी.पी., मानवधिकार और दलित, विश्वभारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, २०११

८. गुप्ता, दीप्ति, दलित और सामाजिक न्याय, राधा पब्लिकेशन्स, ०१०.

☆☆☆